शिक्षा के उद्देश्य एवं मूल्य शिक्षा

शारदा जैन के साथ विश्वंभर की बातचीत

प्रश्नः मैं शिक्षा के लक्ष्यों पर राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र पढ़ रहा था। पढ़ते हुए कुछ सवाल मन में आए। आप इस समूह की एक सदस्य रही हैं और जयपुर में होने की वजह से आपसे बातचीत का अवसर भी सहज सुलभ है। पहला सवाल तो यही है कि शिक्षा के उद्देश्यों को कैसे समझा जाए?

उत्तरः शिक्षा के उद्देश्य के बारे में हमारे फोकस समूह की सहमति थी कि शिक्षित व्यक्ति को एक अच्छा इंसान होना चाहिए और यह एक पुराना विचार है जिसे आर. एस. पीटर्स ने भी सामने रखा। पहला सवाल तो यही है कि हम शिक्षा के अर्थ को कैसे समझते हैं। एक अर्थ में हम कहते हैं कि *हरेक व्यक्ति को शिक्षा मिलनी चाहिए* या *हरेक व्यक्ति शिक्षित होना चाहिए*। यदि इसे ठोस अर्थ में लें तो आप इससे सहमत होंगे। लेकिन इस कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि शिक्षा शब्द से क्या कहना चाह रहे हैं और जिन्दगी से इसका कोई सीधा संबंध नहीं दिखाई देता। शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार से निकलता है। शिक्षा के बिना जिन्दगी को 'जिन्दगी' नहीं कहा जा सकता। इसका अर्थ है कि शिक्षा किसी तरह जीवन की गुणवत्ता से ताल्लुक रखती है, इस विचार पर इस समूह की सहमति थी। अच्छी जिन्दगी कहते हुए हमें देखना होगा कि हम 'जिन्दगी' से क्या समझते हैं? एक सहमति इस समूह में उभरी थी कि शिक्षा इंसान की विशिष्टता को सर्वोत्कृष्ट रूप से उभारने का काम करती है।

मैं व्यक्तिगत रूप से मानती हूं कि हर इंसान विशिष्ट है। व्यक्ति की विशिष्टता पुष्पित और पल्लवित हो, इसके लिए 'अवसर' मिलना जरूरी है। इसे शिक्षा का उद्देश्य भी कहा जा सकता है। अब प्रश्न है कि ये 'अवसर' किस प्रकार के हों और कहां हों? यहां एक बात स्पष्ट करने की जरूरत है कि एक दृष्टि से हरेक व्यक्ति की बहुत-सी शिक्षा 'होती' रहती है और कुछ हम 'करते' हैं। यहां शिक्षा की अवधारणा सीखने की अवधारणा की पर्याय है। इसका अर्थ है कि बिना किसी के हस्तक्षेप के बहुत-सी शिक्षा होती रहती है। कोई कह सकता है कि *मेरी बहुत सारी शिक्षा तब हुई जब मेरी दुर्घटना हुई और मैं लगभग मरने के कगार पर था*। यह वाक्य अर्थपूर्ण है लेकिन इसके मायने यह नहीं हैं कि सबकी दुर्घटना कराई जाए और मरने के लिए छोड़ दिया जाए। यह तो इसका अर्थ नहीं बनता!

प्रश्नः लेकिन यह तो व्यक्ति के जीवन में अनायास हो रहा है और जो स्वभाविक भी है।

उत्तरः बिल्कुल, शिक्षा की चर्चा जहां जाकर अटकती है वह है कि शिक्षा का बंदोबस्त दूसरे लोग करते हैं। जब हम किसी की शिक्षा कर रहे होते हैं तो हम व्यक्तियों के जीवन में हस्तक्षेप कर रहे होते हैं। यदि हम व्यक्तियों को खुद के भरोसे छोड़ दें तो भी वे बहुत कुछ सीखते ही हैं। वे अपनी बात कहना, दूसरों की समझना, बातचीत करना स्वतः सीखते हैं, नृत्य करना या गाना सीख जाते हैं। यह सब सीखना ही है। यदि

हम किसी मकसद से शिक्षा कर रहे हैं तो फिर शिक्षा 'सीखने' का पर्याय नहीं रह जाती। यानी, शिक्षा व्यक्ति के जीवन में एक सुविचारित हस्तक्षेप बन जाती है। क्योंकि यह हस्तक्षेप सुविचारित है इसलिए यह नैतिक रूप से भी स्वीकार्य होना चाहिए। यह एक नैतिक चुनौती है क्योंकि किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति के जीवन में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसने दिया है? अतः यह एक नैतिक दायित्व बन जाता है कि हम अपना उद्देश्य स्पष्ट करें।

आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि हम व्यापक वैविध्य के साथ एकरूपता जैसा बर्ताव कर रहे हैं। एक तरफ तो हम भारतीय परिदृश्य के बारे में कह रहे हैं कि वैविध्य हमारी सबसे बड़ी ताकत है। दूसरी तरफ उस विविधता को दबाकर सभी को एकरूप बनाने की कोशिश कर रहे हैं क्योंकि वह शिक्षा का प्रबंधन करने वालों के अनुकूल है।

प्रश्नः आपके हिसाब से शिक्षा में लक्ष्य क्या हैं?

उत्तरः शिक्षा के लक्ष्य कहने में एक समस्या है। इसे शिक्षा के उद्देश्य कहना चाहिए। देखिए, लक्ष्य अक्सर प्रक्रिया से बाहर होता है लेकिन उद्देश्य प्रक्रिया के अन्तर्गत होता है। क्योंकि शिक्षा कहीं और नहीं ले जाती। यह खोजने की प्रक्रिया में देखने जैसा है (Lookinh and Finding)। जब आप किसी चीज को खोज रहे होते हैं तो देख भी रहे होते हैं। शिक्षा हमेशा एक प्रक्रिया ही है। सीखना विभिन्न तरह से चलने वाली सतत प्रक्रिया है और शायद शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में शिक्षक ज्यादा सीखने वाला है, सबसे बड़ा लाभार्थी है।

हमने बातचीत की शुरुआत जीवन के अधिकार से की थी। अब विस्तार से समझने की जरूरत है कि अच्छा इंसान किसे कहेंगे। अच्छे इंसान वे हैं जो स्पष्ट सोच सकेंगे, उचित-अनुचित का भेद कर सकेंगे और जो काम वे करेंगे, वह स्पष्ट सोचे और उचित-अनुचित महसूस किए हुए के साथ संगत होगा। शिक्षा का संबंध व्यक्ति के ज्ञानात्मक, भावात्मक और व्यवहारात्मक पक्षों से होता है। जब तक ज्ञानात्मक पक्ष, भावात्मक पक्ष और व्यवहारात्मक पक्ष एक साथ नहीं आएंगे तब तक शिक्षा एकांगी ही रहेगी। यानी, यदि कोई ज्ञानात्मक पक्ष पर ही अधिकार प्राप्त कर ले तो वह बड़ा पंडित तो सकता है लेकिन हो सकता है उचित व्यवहार नहीं कर पाए। उदाहरण के लिए, सिगरेट के पैकेट पर लिखा रहता है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। यह बात व्यक्ति को समझ भी आती है और इसका तर्क भी समझ आता है लेकिन फिर भी वह व्यवहार में सिगरेट पीता है। हम यह कह रहे हैं कि ज्ञान तभी होगा जब वह इंसान के भावात्मक और व्यवहारात्मक पक्ष में भी आए। इसे सुकरात के अर्थ में भी कहा जा सकता है कि 'ज्ञान ही सद्‌गुण है'। आज के वक्त में अनेक लोग बहुत ही ज्ञानवान तो हैं लेकिन वे बहुत दुष्ट किस्म के हैं।

प्रश्नः इंसानों की विशिष्टता को कैसे समझें और शिक्षा इसे उभारने में किस तरह मदद कर सकती है?

उत्तरः यदि हर इंसान विशिष्ट है, जैसा कि हम मान रहे हैं, तो इसका मतलब है कि उस विशिष्टता को उभारने की जरूरत है। विशिष्ट होने का अर्थ है कि व्यक्ति की जो रुचियां, प्रवृत्तियां हैं वे उभरकर आएं। मसलन, मुझे गणित में दिलचस्पी है या संगीत में है या गप्प लगाने में बहुत मजा आता है तो वे उभरकर आनी चाहिएं। या मुझे शांति या मस्ती में मजा आता है तो उसके सामाजिक संदर्भ में उसकी स्वीकार्यता को पहचानकर उभारे और अपने को पहचाने। हो सकता है कि कोई कहे कि उसे दूसरों की सेवा करना बहुत अच्छा लगता है। हो सकता है कि वास्तव में सेवा करना अच्छा न लगता हो। ऐसे में क्या मैंने अपने को पहचानते हुए कहा है या वह कहा है जो दूसरों को सुनने में अच्छा लगता है। इसलिए मैं अपने आपकी सच्चाई के और उससे अनुसार पेश आऊं। दूसरा मुझे कभी नैतिक नहीं बना सकता।

अधिकांशतः व्यक्ति खुद भी नहीं जानते कि वे क्या हैं। हम यहां से बात शुरू कर सकते हैं कि मैं अपने को कैसे पहचानती हूं। मैं अपने को तब पहचानती हूं जब दूसरों के संपर्क में आती हूं। मसलन, दूसरा जब यह कहता है कि यह बात आपने बहुत अच्छी कही। तब मुझे लगता है कि यह बात अच्छी तरह कही जा सकती है। मैं अकेला रहना पसंद करती हूं, यह मुझे तब समझ आता है जब मैं भीड़ में चलती हूं। खुद को जानना इसलिए जरूरी है कि हम अक्सर अपनी चीजों के लिए दूसरों को जिम्मेदार ठहराते रहते हैं। जैसे, कोई कह सकता है कि मैंने यह काम इसलिए किया

क्योंकि उसने मुझसे ऐसा करने के लिए कहा था या मैं कोई चीज इसलिए नहीं सीख पाया क्योंकि उसने मुझे ठीक से सिखाया ही नहीं या मेरी आवाज ऊंची इसलिए हो गई कि क्योंकि उसने मुझसे बोला ही ऐसे था। यानी, हम खुद को सुरक्षित रखकर किसी दूसरे को जिम्मेदार ठहराते रहते हैं जिसे मैं खुद भी आपत्तिजनक मानती हूं। मैं जब स्वयं को जानूंगी तभी मैं अपने को परिष्कृत कर सकती हूं। शिक्षा का उद्देश्य स्वयं को जानना है। इसी प्रक्रिया में मैं दूसरों को भी जानती हूं। और इसके बाद पुनः मैं स्वयं को जानती हूं। मैं अपने-आपको इस तरह जानूं जो कि स्वीकार्य हो और सद्गुण संपन्न हो। हम यहां शिक्षा का सीमित प्रयोग कर रहे हैं जो कि सामाजिक संदर्भ में है। यदि आप शिक्षा में हस्तक्षेप कर रहे हैं, यदि यह आपके हित में है तो यह दूसरों के हित में भी होना चाहिए। यानी, आप स्वयं के लिए जितने महत्वपूर्ण हैं उतने ही दूसरे भी महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्नः क्या हम शिक्षा के उद्देश्यों पर पुनर्चिंतन इसलिए करना चाहते हैं ताकि जो हम कर रहे हैं उसे पलटकर देख सकें या समय के साथ शिक्षा के उद्देश्यों में बदलाव की जरूरत होती है?

उत्तरः यह एकदम सही है कि हम जो कर रहे हैं उस पर पुनर्चिंतन करना चाहते हैं। क्योंकि फिलहाल हम जो कर रहे हैं उसमें हमारे ऊपर शिक्षा का प्रबंधन हावी हो रहा है। यदि आप दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप कर रहे हैं तो इसका मतलब है कि वे अपनी शैली में उभर सकें न कि हम जैसा चाहते हैं उसके अनुरूप बनें। प्रबंधन के नजरिए की दिक्कत यह है कि हम दूसरों को जैसा चाहते हैं, वैसा बनाने की कोशिश करते हैं। किसी एक वार्ता में किसी ने कहा कि बच्चे सीख नहीं रहे हैं। मैंने कहा कि आप मजाक कर रहे हैं। बच्चे तो बहुत कुछ सीख रहे हैं। दिक्कत यह है कि आप जो सिखाना चाहती हैं वे उसे नहीं सीख रहे हैं। इसका मतलब है कि आप क्या सिखाना चाहते हैं, उस पर पुनर्चिंतन करें। शिक्षा के उद्देश्यों में समय के साथ नहीं, संदर्भ के साथ बदलाव होता है। क्योंकि शिक्षा हम निर्वात में तो कर नहीं रहे हैं, शिक्षा हम एक संदर्भ में कर रहे हैं। हम शिक्षा एक सामाजिक और राजनैतिक संदर्भ में कर रहे हैं। आप कह सकते हैं कि संदर्भ में बदलाव समय के अन्दर ही होता है। अच्छी शिक्षा या अच्छा जीवन क्या होता है, इसके लिए आप शिक्षा या जीवन किसे कहेंगे, इसकी जितनी स्पष्टता होगी उतना ही आपको पता चलेगा कि अच्छी शिक्षा या अच्छा जीवन क्या है। जीवन का क्या उद्देश्य है और यदि वह पूरा नहीं हो पा रहा है तो आप कहेंगे कि यह कोई जिन्दगी में जिन्दगी है! अच्छी शिक्षा वह होगी जिससे हमारी जिन्दगी बेहतर हो और जिन्दगी इस समय एक सामाजिक संदर्भ में देखी जा रही है।

प्रश्नः शिक्षा की प्रक्रिया में सबसे विवादित रहता है कि बच्चों को मूल्य शिक्षा या आपके हिसाब से सद्गुण की शिक्षा कैसे दें। आपके इसके बारे में क्या विचार हैं?

उत्तरः हम कहते हैं कि हम भारतीय संविधान को मानते हैं। गैर-बराबरी को ज्ञानात्मक रूप में समझना तो आसान है। यदि मैं गैर-बराबरी को भावात्मक और व्यवहारात्मक रूप में नहीं समझती तो फिर मैं गैर-बराबरी को समझती ही नहीं। वह शिक्षा कैसी है जो सिर्फ एक पक्ष को पकड़े! व्यवहारात्मक का मतलब है कि आपको सद्गुण संपन्न होना चाहिए यानी दूसरों के बारे में वैसा सोचना जैसा अपने बारे में सोचते हैं। नैतिकता का मतलब है कि दूसरे को अपना जैसा समझकर, अपने साथ जैसा व्यवहार चाहते हैं वैसा ही व्यवहार उसके साथ करें। शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य है कि व्यक्ति का परिष्कार होना चाहिए और क्योंकि हरेक व्यक्ति विशिष्ट है और उसकी विशिष्टता निखर कर आनी चाहिए।

मूल्य का अर्थ है जो हम चाहते हैं। आज की स्थिति में हम कहते हैं कि 'मूल्य' नहीं हैं। वास्तव में मूल्य तो बहुत हैं। आज की तारीख में समाज में ज्यादा से ज्यादा कमाना सबसे बड़ा मूल्य है या समाज में ऊंचा स्तर एक बड़ा मूल्य है जो कि आर्थिक स्तर पर आधारित है। ऐसा तो होता नहीं है कि मूल्य कभी नहीं होंगे। हम जो चाहते हैं वे ही मूल्य हैं, लेकिन हम उनकी घोषणा नहीं करते हैं। हम घोषणा ऐसे बुनियादी मूल्यों की करते हैं जैसे 'सब सुखी रहें', 'सब अच्छे रहें' या 'सब स्वतंत्र रहें'। लेकिन वास्तविकता में यह हो सकता है कि हम उन्हें नियंत्रित करना चाहते हैं। हम

कहते हैं कि सभी को बराबरी और न्याय मिले। ये तो हमारे देश के संविधान में घोषित मूल्य हैं। हम अनेक बार कहते हैं कि हम इन मूल्यों की परिधि में रहते हैं लेकिन वास्तव में तो हम इन मूल्यों की परिधि में नहीं रहते। हमारे मूल्य कुछ और ही होते हैं।

यथार्थ तो वही है जो अनुभूत है। यदि जो अनुभूत है उसे आप समझ सकें और महसूस कर सकें तो आप उसे व्यवहार के अन्दर स्वयं नियंत्रित कर सकते हैं। इसका पूरा अभ्यास हमारी शैक्षिक प्रक्रिया में होना चाहिए। चाहे हम कक्षा में पेंसिल बांट रहे हैं चाहे हम खिड़की के पास बैठ रहे हों या दरवाजे के पास। इनके लिए एक सतत अवसर मिले जिसमें हम अपने-आपको जान सकें। यानी, हम किसी के कहे बिना कि तुम कचरा मत फैलाओ, स्वयं इसलिए सफाई रखें कि साफ-सुथरा देखने में हमें सुन्दरता महसूस होती है।

मेरा मानना है कि शिक्षा ज्ञान के साथ कुछ ज्यादा हस्तक्षेप करती है लेकिन शिक्षा को भावनाओं और व्यवहार को भी साथ लेकर चलती है। व्यवहार में आना जरूरी है क्योंकि यदि कोई गाली दे रहा है तो हम कहेंगे कि यह कैसा शिक्षित व्यक्ति है, शिक्षा में हम ज्ञान तक पहुंचने की क्षमता के लिए काम करते हैं। क्योंकि ज्ञान तो लगातार बढ़ रहा है। ज्ञान के विश्लेषण करने की क्षमता और इसके बाद नतीजे निकालने की क्षमता को निखारने की जरूरत है। इसके बाद आती है ज्ञान में योगदान करने की क्षमता। शिक्षा को हमेशा ज्ञान में योगदान कर पाने की क्षमता को बढ़ावा देना चाहिए। इसके बाद हासिल किए गए ज्ञान के अनुसार कर्म/व्यवहार करने का साहस पैदा करना चाहिए। साहस इसलिए कि यह आदत का प्रतिकार करने के लिए होता है। सबसे पहले यह जानने की जरूरत होती है कि व्यक्ति की खुद की क्या जरूरत है। जब व्यक्ति को उसकी जरूरत महसूस होगी तो वह प्रयास करेगा, उसमें ऊर्जा आएगी और उससे उत्प्रेरणा मिलेगी। जरूरत उत्प्रेरणा की तरफ ले जाएगी और बिना उत्प्रेरणा के कर्म होगा ही नहीं। जब हम यह कहते हैं कि बच्चे नहीं सीख रहे हैं तो इसका मतलब है कि बच्चों की जरूरत कुछ अलग है।

प्रश्नः स्कूली शिक्षा के संदर्भ में इसे कैसे समझे?

उत्तरः स्कूली शिक्षा में अधिकांश चीजें बच्चों की जरूरत की अनदेखी करते हुए हो रही हैं, हम उन्हें जो सिखाते हैं वह उनके व्यवहारिक जीवन से अलग होता है। अतः वे उस सिखाई गई जानकारी को रटकर जवाब देना सीख लेते हैं। इसी ज्ञान की जांच भी की जाती है जिसके आधार पर उन्हें पास-फेल करते हैं।

हमारे काम के दौरान एक अनुभव उत्साहित करने वाला रहा है। एक स्कूल में लड़कियों को भ्रमण पर ले जाने का प्रावधान कार्यक्रम में था। हमने उनसे पूछा, ''कहां चलें?'' लड़कियों ने कहा कि हमें तो ताजमहल देखना है। उन्होंने कहा कि हमने ताजमहल कभी नहीं देखा और हमारे घर वाले हमें कहीं जाने भी नहीं देते हैं जबकि हिन्दुस्तान से बाहर के लोग इसे देखने आते हैं। हमने कहा कि ठीक है हम ताजमहल चलेंगे लेकिन वहां जाने से पहले ताजमहल के बारे में जानना जरूरी है। हमने यह जानना शुरू किया कि ताजमहल कहां है, किसने बनाया और कब बनाया आदि-आदि। सभी लड़कियां ताजमहल से जुड़ी जानकारियां जुटाने लग गईं। उन्होंने 23 किताबें देखीं। पुस्तकालय से किताबें लाए, इतिहास की किताबों में पढ़ा। और उन्होंने बहुत ही सुन्दर प्रोजेक्ट ताजमहल पर लिखा कि बस में जाएंगे तो कितना पैसा लगेगा, रेल से जाएंगे तो कितना लगेगा। यह सब उन्होंने अपने आप पता लगा लिया। मेरे कहने का अर्थ यही है कि जरूरत के अनुसार सिखाया जाएगा तो बच्चे स्वयं ही उत्साह से सीखेंगे।

एक दिन मैंने कहा कि मैं भूटान गई थी। उन्होंने कहा कि यह कहां है। मैंने कहा कि पता करते हैं। हम एक एटलस लेकर आए और एटलस के इंडेक्स में देखा कि *बी* पर होगा। दूसरी लड़की ने कहा कि मैं इसमें बांग्लादेश देखूं। *एटलस की इंडेक्स में बी* से जितने भी देश थे उन्होंने तुरंत देख लिए। सीखने के प्रति यदि जोश होता है तो सीखना होता है। उत्प्रेरणा ही मुख्य है और वह भावना पर आधारित होती है। यदि ज्ञान में भावना नहीं है तो ज्ञान की खोज नहीं हो पाएगी। रास्ता एक चीज है लेकिन रास्ते पर जाने की इच्छा दूसरी चीज है।

इसे भारतीय परंपरा में बेहतर तरीके से समझाया गया है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में कर्म का सिद्धान्त (थियरी ऑफ एक्शन) बहुत महत्वपूर्ण है। यदि इसे चार्ट बनाकर सरल तरीके से समझें तो इस सिद्धान्त के चार्ट में पहला कॉलम है इच्छा का, दूसरा कॉलम है संकल्प का। इसके बाद है कर्म और अंत में है फल का कॉलम। इच्छाएं अनेक हैं और एक-दूसरे में गुंथी हुई हैं। जैसे कि मैं बात करना चाहती हूं और चुप भी रहना चाहती हूं। मैं सोना भी चाहती हूं और समान्तर रूप से काम भी करना चाहती हूं। हमारी विविध इच्छाओं में से ही एक संकल्प बनता है जो अंततः कर्म को प्रेरित करता है। संकल्प की जड़ें तो इच्छा में ही हैं। बिना इच्छा के संकल्प हो ही नहीं सकता। लेकिन जब तक संकल्प नहीं है या निर्णय नहीं है तब तक हम उसे कर्म नहीं कहते। मान लीजिए, मैं अपने हाथ में चाय का गिलास लिए खड़ी हूं और कोई मुझमें धक्का दे दे और उसकी वजह से आपके ऊपर चाय गिर जाए तो यह कर्म नहीं माना जाएगा। यदि कर्म है तो उसका कुछ न कुछ फल तो होगा ही। फल इस दुनिया में होता है और उसे बहुत-सी चीजें प्रभावित करती हैं। इसलिए जरूरी नहीं कि हमने जैसा सोचा है वैसा फल मिले। इच्छा से लेकर कर्म तक तो कर्ता करता है लेकिन कर्म के फल में दुनिया की बहुत-सी ताकतें काम कर रही होती हैं। ज्ञान कार्य-कारण संबंध को खोजना भी है कि क्या करने से क्या होता है। कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय चिन्तन परंपरा में शिक्षा का दर्शन नहीं है। यदि भारतीय परंपरा में कर्म का दर्शन है तो शिक्षा दर्शन भी है।

प्रश्नः शिक्षा में मूल्यों या सद्गुणों की शिक्षा किस प्रकार की जाए?

उत्तरः हमारे फोकस समूह में यह बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल था कि सद्गुण और दुष्टता के बारे में कैसे सिखाएं। हमारे सामने एक बड़ी समस्या यह थी कि आजकल कुछ लोग किसी भी तरीके से जल्दी पैसा कमाना चाहते हैं या कुछ भी करके समाज में ऊंचा स्तर पाना चाहते हैं। हम लोगों का मत था कि सद्गुण को आप सिखा नहीं सकते। ऐसा हो सकता है कि कुछ करने से तात्कालिक सफलता मिल जाए लेकिन उसके बाद क्या होता है? आप इसे ऐतिहासिक तौर पर दिखा सकते हैं कि ऐसा-ऐसा करने से सफलता मिल तो जाती है लेकिन उसके बाद क्या हुआ? यदि लोगों को यातना दी जाती है तो फिर क्या होता है? अतः आपको कहना होगा कि ईमानदारी बेहतरीन नीति है या शायद इसीलिए भारतीय चिंतन परंपरा में सत्यमेव जयते कहा गया होगा। ये उक्तियां हैं लेकिन क्या ये निरर्थक हैं?

सद्गुण की बातचीत एक सामाजिक या राजनैतिक संदर्भ में हो सकती है। सदगुण का अर्थ यह है कि क्या आप केवल अपनी दृष्टि से देख रहे हैं या उस दृष्टि से देख रहे हैं जिसमें कि दूसरे को वही हैसियत मिले जो आपको मिले। नैतिकता का अर्थ यही है। शिक्षा की प्रक्रिया में व्यक्ति यही सीखे कि मैं जितना महत्वपूर्ण हूं दूसरा व्यक्ति भी उतना ही महत्वपूर्ण है। ऐसा नहीं हो सकता कि कक्षा में मैं अपने जूते पहनकर आऊंगा लेकिन बच्चे अपने जूते बाहर ही खोलेंगे। आपको दूसरे को संदर्भ में रखकर अपना पूरा कर्म या व्यवहार निर्धारित करना होगा। दरअसल, नैतिकता में सद्गुण ही तो हैं। यदि नैतिकता शब्द का इस्तेमाल करना ही है तो फिर शिक्षा की प्रक्रिया ऐसी हो जिसमें नैतिकता प्रतिष्ठित हो और वही सद्गुण है।

आप शिक्षा के उद्देश्यों से जीवन दर्शन की ओर जाते हैं और आप इससे बच नहीं सकते। ये सभी बातें पाठ्यचर्या दस्तावेज में नहीं लिखी जा सकतीं क्योंकि यह स्पष्ट है कि हम बहुत ही सीमित काम कर रहे हैं। यदि हम किसी व्यक्ति के जीवन में हस्तक्षेप कर रहे हैं तो क्या हम उन्हें किसी भी दूसरे व्यक्ति की तरह बनाने की कोशिश कर रहे हैं या हम उसे पर्याप्त मौके देकर उसके विशिष्टत्व को उभारने का काम कर रहे हैं। इसका मतलब है कि हरेक व्यक्ति अपने तरीके से समाज में योगदान कर सकता है। कोई व्यक्ति किसी एक तरह से योगदान कर सकता है जबकि दूसरा व्यक्ति किसी दूसरी तरह से योगदान कर सकता है। यदि कोई व्यक्ति दूसरा पक्ष भी रख रहा है तो वह भी एक तरह का योगदान है।

प्रश्नः स्कूलों में जिस तरह मूल्य शिक्षा या सद्गुण की शिक्षा दी जा रही है, उसके बारे में आप क्या कहेंगी?

उत्तरः स्कूलों में सद्गुण की शिक्षा जिस तरह दी जाती है उसके बारे में मेरा मानना थोड़ा अलग है। मैं इस बात में कम ही दिलचस्पी रखती हूं कि दूसरे क्या गलत कर रहे हैं। मेरी दिलचस्पी इसमें है कि मैं जो सोचती हूं क्या मैं वह

कर रही हूं। मैं अपनी ऊर्जा इसमें लगाना चाहती हूं कि मैं किसमें विश्वास करती हूं। दूसरों की आलोचना में बहुत ऊर्जा लगानी होती है, इसके लिए यह भी समझने की जरूरत होती है कि वे ऐसा किन दबावों में कर रहे हैं। इसमें पहली बात तो यह है कि क्या मैं समझ भी रही हूं कि हो क्या रहा है। किसी चीज को नकार देना सबसे आसान काम है। जय जरूरी है कि किसी विचार को खारिज करने से पहले मैं उसे समझूं। सहृदयता से और उनकी दृष्टि से देखूं। हो सकता है कि कुछ अच्छी चीजें भी हो रही हों और वे हमारी नजर से छिप रही हों क्योंकि हो सकता है कि वे मेरे तर्क के लिए मुफीद न हों।

मैं एक बार सड़क किनारे किसी स्कूल में रुक गई। संयोग से वहां एक अप्रशिक्षित शिक्षक बच्चों को पढ़ाता था। वह शिक्षक बच्चों की हाजरी नहीं लेता था। उसने बच्चों की हाजिरी का एक अपना तरीका निकाल रखा था। उसने सभी बच्चों के नाम के कार्ड बना रखे थे और रोजाना सुबह उन कार्ड को कक्षा के बाहर रख देता था। बच्चे आते हुए अपने नाम का कार्ड उठाकर कक्षा में बैठ जाते थे। बच्चों को अपना कार्ड ढूढ़ने में बड़ा मजा आता है। शिक्षक बाद में कभी जाकर देख लेता था कि बाहर किस-किस नाम के कार्ड बच गए हैं और उससे हाजरी कर लेता था। यह बहुत ही रचनात्मक तरीका है। हो सकता है कि किन्हीं जगहों पर कुछ लोग अच्छा कर रहे हों। अक्सर हम बहुत ही आसानी से कह देते हैं कि सब गलत हो रहा है, जैसे पढ़ाना चाहिए उस तरह नहीं पढ़ा रहे हैं। हमारे यहां यह बहुत 'अनुचित' हो रहा है कि हम शिक्षकों को भी एक ही तरह से काम करने के लिए बाध्य कर रहे हैं।

प्रश्नः यह कहा जाता है कि मूल्य शिक्षा को शिक्षा प्रक्रियाओं का अंदरूनी हिस्सा बनाना होगा। इसे कैसे समझें?

उत्तरः यानी, इसे शिक्षा की प्रक्रिया का हिस्सा बनाना होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि हम किसी चीज के लिए दूसरों को मना कर रहे हैं लेकिन खुद उससे उल्टा कर रहे हैं। मसलन, यदि बच्चे कक्षा में जूते-चप्पल पहनकर नहीं जा सकते तो शिक्षक के लिए भी यह जरूरी है कि वह भी अपने जूते कक्षा के बाहर ही उतारे। इसी तरह ऐसा नहीं हो सकता कि खुद मूंगफली के छिलके फैला रहे हैं और बच्चों को सफाई के लिए कह रहे हैं। इसका मतलब है कि हम जो कुछ भी कह रहे हैं उसका स्वयं भी पालन करें। यह तो एक बात है लेकिन सभी मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया में समाहित होने चाहिएं।

प्रश्नः क्या इसे विषयों के साथ जोड़कर देख सकते हैं?

उत्तरः पढ़ाने की विधा के साथ जोड़ सकते हैं। विषयों की विषयवस्तु चुनते हुए संतुलन और समंजस्य स्थापित करना होगा। लेकिन इसका ज्यादा हिस्सा प्रक्रिया में है। मूल्य शिक्षा अलग नहीं है वह आपके विषय चयन में है। विज्ञान में आप जो सोच रहे हैं वह विचार आज सही हो सकता है, लेकिन संभव है कि भविष्य में इससे भिन्न विचार भी सत्य हो। विज्ञान के इतिहास में तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। कहानियों पर चर्चा के जरिए बहुत से मूल्यों पर बात की जा सकती है। इसलिए आपको विज्ञान में भी अपने दावों के प्रति मूलतः विनम्र होना चाहिए और अपनी जानकारी के अहंकार को एक जगह पर सीमित करना चाहिए। जैसा कि कहा जाता है कि सभी आनुभविक कथनों को सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता। यदि आप कोई ऐसा दावा करना चाहते हैं तो आपको विनम्र होना चाहिए और इसे ही शिक्षा प्रक्रियाओं का हिस्सा बनाने की जरूरत है। ◆

परिचयः शारदा जैन राजस्थान की जानी-मानी शिक्षाविद हैं, शिक्षा के लक्ष्यों पर गठित राष्ट्रीय फोकस समूह की सदस्य रही हैं। संधान, जयपुर की निदेशक हैं।